ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 263-264
ISSN NO.-2347-2944
Vol.-9, No.-II, Issues-10 YEAR- Dec -2018

आर्ष काव्य में हास्य

डॉ0 विनोद कुमार पाण्डेय
एसो0 प्रोफेसर– संस्कृत विभाग, के0 जी0 के0 पी0 जी0 कॉलेज मुहम्दाबाद (उ0प्र0) भारत

Received- 10.11.2018, Revised- 16.11.2018, Accepted - 19.11.2018 E-mail: dr.akileshmishra63@gmail.com

सारांश : *आर्ष काव्य में हास्य रस की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विश्लेषण किया गया है। इस शोध पत्र में यह जानने का प्रयास किया गया है कि इन्द्र सूक्त में किस प्रकार से सुन्दर हास्य वर्णन परिलक्षित होता है। महाकवि वाल्मीकि के काव्यों में भी हास्य प्रसंग की प्रचुरता देखने को मिलती है।*

कुंजीभूत शब्द– प्रत्यय, व्युत्पत्ति लभ्य, विकृत आकार, चेष्टा, अलंकार चंपलता, अनुकृति,कृत्रिम विकृतियों।

हसितु योग्यं हास्यम् की व्युत्पत्ति से हसनार्थक 'हस्' धातु से 'ण्यत्' प्रत्यय होकर 'हास्य' पद व्युत्पन्न होता है। इसका व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है हँसने योग्य। विकृत आकार, चेष्टा, अलंकार चंपलता, अनुकृति आदि कृत्रिम विकृतियों के दर्शन या श्रवण से श्रोता के मानस में जो आनंद उत्पन्न होता है, उसे ही हम हास्य की संज्ञा देते हैं। इस विषय में आचार्य भरत का मत द्रष्टव्य है। आचार्य भरत ने हास्य का स्थायी भाव 'हास' माना है। हास का परिपोष ही हास्य है। भरत के परवर्ती साहित्याचार्यों ने हास्य को चित्त का विकार न मान करके विकास माना है। धनंजय ने चित्त के विकारों को चार रूपों में विभक्त किया है – विकास, विस्तार, क्षोभ और विक्षेप। भरतादि आचार्यों ने हास्य को श्रृंगार से उद्भूत माना है। 'श्रृंगाराद्धि भवेद्वास्यो'। अतः रत्याभास जनित चित्त विकास का हास्य की कोटि में आना स्वाभाविक है। विकृतवेषादि द्वारा उदित होने वाली चित्त की विकासावस्था का नाम ही हास्य है। आचार्य भरत ने आंतरिक दृष्टि से हास्य को दो भेद माने हैं– आत्मस्थ और परस्थ। जब व्यक्ति स्वयं हँसता है तो वह आत्मस्थ और जब वह दूसरों को हँसाता है तो पर परस्थ हास्य कहा जाता है। आचार्य अभिनव गुप्त ने हास्य का मूल कारण अनौचित्य की भावना माना है। हास्य के सम्बन्ध में अनुकृति या आभार सिद्धान्त अभिनव गुप्त की मौलिक देन कहा जा सकता है। वास्तविकता जब अपने यथार्थ स्वरूप को त्याग करके कृत्रिम रूप में प्रकट होती है तब हास्य की उत्पत्ति होती है।

पाश्चात्य साहित्य में गुण, उद्देश्य तथा उपकरण के आधार पर हास्य विषयक शब्दों का प्रयोग किया गया है। विट, Humour, Joke, Irony, Fun, Satire आदि। 'सहज भाव' में जब परिस्थितियों की प्रतिक्रिया होने लगती है तभी विकास आरम्भ हो जाता है। सबसे पहले यह विकार दृष्टि में आता है और वह भाव में परिणत होता है। भाव ध्वनि में प्रकट होता है और ध्वनि की प्रतिक्रिया में बुद्धिविकार होता है। हास्य के अन्तर्गत व्यंग्य और विकृति की रचना गहरी दृष्टि और विस्तृत अनुभव की अपेक्षा रखती है। वैदिक प्रार्थनायें विश्व–कल्याण की भावना को निहित किये हुए है, इसके साथ ही साथ उनमें यत्र–तत्र हास्य का भी पुट दृष्टिगोचर हो जाता है। इन्द्र के अत्यधिक सुरापान के कारण बृहदाकार सुरापात्र को 'इन्द्रोदर' नाम दिया गया है जो वस्तुतः हास्यपरक है। वशिष्ठ ऋषि का मण्डूक सूक्त हास्य का अच्छा उदाहरण है। परस्परलय मिलाते हुए मेढ़क ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे अध्यापक और शिष्य (वेदपाठी) वैदिक ऋचाओं को सस्वर दुहराते हो।

यदेषामन्यो अन्यस्यवाचं शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः।
सर्वे तदेषां समृथेव पर्व यत् सुवाचोवदथना ध्यप्सु ।।

चौथे मण्डल के 24 वें सूक्त में इन्द्र के क्रय वर्णन में भी सुन्दर हास्य के दर्शन होते हैं। दसवें मण्डल के 97 वें सूक्त में अथर्वा के पुत्र भिषक् का जड़ी–बूटियों के विषय में एकांगी वार्तालाप हास्य का एक सजीव चित्र दर्शाता है। दसमें मण्डल के 95वें सूक्त में उर्वशी द्वारा स्त्री जाति पर व्यंग्य किया गया है। अथर्ववेद में भी व्याधिजनक कीड़ों पर व्यंग्य किया गया है। कृमियों की कृमि नाशकारी इन्द्र की शिला पर जैसे चक्की से चने पीसे जाते हैं, वैसे ही कृमियों को पीसने की बात कही गयी है। ज्वर का वर्णन करते हुए उसके परिवार का परिचय बड़े मनोरंजक ढंग से दिया गया है। तवमन्। बल को क्षीण करने वाला रोग रूप तेरा भाई और खाँसी तेरी बहिन तथा पाप रूप भतीजा है।

वाल्मीकि रचित 'रामायण' में भी हमें हास्य के सुन्दर प्रसंग देखने को मिलते है। लंका से लौटने के पश्चात् हनुमान अन्य वानरों के साथ मधुबन में क्रीड़ा करते है। मदोन्मत्त होकर एक–दूसरे पर मधु फेंकते है। गिरते हैं, पक्षियों जैसा कलरव करते है। इन उदाहरणों में वानर आलम्बन हैं उनका हँसना, लड़खड़ाना आदि अनुभाव हैं तथा हर्ष आदि संचारी भाव है। वाल्मीकि ने अयोध्या काण्ड के अन्तर्गत मंथरा–कैकयी

संवाद के अन्तर्गत व्यंग्य–मिश्रित हास्य की उद्भावना की हैं। मंथरा अपनी विकृत आकृति एवं भाव्–भंगिमा के कारण हास्य रस की आलम्बन है। कैकेयी द्वारा कुबड़ी

ISSN NO.-2347-2944
Vol.-9, No.-II, Issues-10 YEAR- Dec -2018

मंथरा के सौन्दर्य और बुद्धि के विषय में कही गयी ब्जयास्तुति मनोरंजक है।

विमलेन्दु समं वक्त्रमहोराज राजसिमन्थरे।
जघनं तव निर्मृष्टं रशनादाम शोमितम्।।

विनोद का चरम बिन्दु तो कुबड़ी की जंधाओं के वर्णन में देखने को मिलता है। कवि ने मंथरा की जंधाओं का वर्णन करते हुए उसे 'परिपूर्ण जघना' तथा 'मृशमुपन्यस्थ जंघा' कहा है। शूपर्णखा प्रसंग में भी स्वस्थ हास्य के दर्शन होते है। प्रणयिनी (शूपर्णखा) तथा प्रणयी (राम) के सौन्दर्य में वैषम्य स्थापित करते हुए कवि ने सुन्दर हास्य की उद्भावना की है। राम सुन्दर, सुकुमार, दीर्घ नेत्रों वाले, प्रिय दर्शन हैं। तथा उनसे प्रणय का प्रस्ताव रखने वाली शपर्णखा, कुरूपा, परिणतवयवृद्धा है। शपर्णखा को राम अपने भाई लक्ष्मण के पास भेजते हुए कहते है, कि मेरा भाई प्रिय दर्शन, शीलवान है। इस प्रकार राम एक ओर तो शपर्णखा को उकसाते हैं, और दूसरी ओर अपने भाई की विकट दशा का आनंद भी लेते हैं। राक्षस–पात्रों के नामकरण में भी कवि की व्यंग्यात्मक प्रवृत्ति के दर्शन होते है। यथा–एकाक्षी, एककर्णा, गोकर्णी, लम्बकर्णी, अश्वपादी आदि।

महाभारत का सम्बन्ध लोक जीवन से हैं अतः महाभारत में शुद्ध हास्य, व्यंग्य मिश्रित हास्य, तथा शुद्ध व्यंग्य तीनों प्रकार के हास्य के वर्णन मिलते हैं। शुद्ध हास्य के अन्तर्गत ऋष्श्रंग वृत्तान्त, देवयानी कच विवाह, दुर्योधन का धर्मराज युधिष्ठिर के मय–निर्मित सभा–भवन को देखने का प्रसंग, शिखंडी आदि के प्रसंग मिलते हैं। विमण्डक ऋषि के पुत्र ऋष्यश्रंग के प्रथमबार रमणियों को देखना और उसका वर्णन अपने पिता से करना हास्य की सृष्टि करता है। बृहस्पति पुत्र कच से शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी प्रेम करने लगी थी, देवायानी ने कई बार असुरोंद्वारा कच को मार डालने पर पिता शुक्राचार्य से निवेदन कर प्राणों की रक्षा भी की थी। कच जब विद्या प्राप्त करने के पश्चात् जाने लगे तो देवयानी ने कच से प्रणय–निवेदन किया। कच ने अपने और देवयानी के संबंध को भाई–बहिन का सम्बन्ध मानकर उससे साथ छल किया। भाई–बहिन के जिस सम्बन्ध को कच ने स्वीकारा वह वाकछलता का द्योतक है।

युधिष्ठिर के मय–निर्मित सभा–भवन में दुर्योधन को स्फटिक निर्मित स्थल में जल का भ्रम हुआ जिसके कारण वह वस्त्र ऊपर करके चलने लगा। यह प्रसंग हास्य की सृष्टि करता है। स्फटिकमणि सदृश स्वच्छ जल से पूर्ण बावड़ी को स्थल समझ कर गिर पड़ने, स्फटिकमणि से निर्मित बन्द दरवाजे को खुला समझने तथा उससे सिर टकराने के प्रसंगों में हास्य के दर्शन होते हैं।

वाल्मीकि मानवीय दुर्बलताओं को भी सहज स्वाभाविक मानते हुए मानव प्रकृति का रसास्वादन करते हैं, यही कारण है कि वाल्मीकि के काव्य में भी निर्मल हास्य के लोक जीवन से सम्बद्ध होने के कारण महाभारत में हास्य के प्रसंग प्रचुरता से मिलते है। वेदों में भी इहलौकिक, पारलौकिक संबंध वर्णित होने पर भी हास्य के यत्र–तत्र प्रसंग प्रकीर्ण मिलते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शब्दार्थ चिन्तामणिः पृ0 1012
2. विकृतपरवेषालंकार धार्ष्टलौल्य कुहकासत्प्रलाप
नाट्यशास्त्र 6/48 (ख)
3. हासस्य परिपोषो हास्यः
हंस विलाप, उल्लास 44, पृ0 250
4. दशरूपकम् – 4/43
5. नाट्य शास्त्र 6/36
6. 'अनौचित्यप्रवृत्तिकृतमेव हास्य विभावत्वम् ।
तच्चानौचित्यं सर्वरसानां विभानुभावदौ
सम्भाव्यते। हिन्दी अभिनव भारती, षष्ठोऽध्
यायः, पृ0 519
7. डा0 रामकुमार वर्मा – दृश्यकाव्य में हास्य,
आलोचना जनवरी 1955
8. न वै स्त्रैणानिसख्यानि सन्ति सरला वृकाणां
हदयान्येता।ऋग्वेद 10/95/15
9. अथर्ववेद 5/22
10. अयोध्या सर्ग 62/13,14
11. सुमुखं दुर्मखी रामं वृतमध्यं महोदरी
तरूणं दारूणा वृद्धा दक्षिणं वामभाषिणी।
रामायण, अरण्य काण्ड सर्ग।?
12. इहागतो जटिलो ब्रहमचारी
न चैहत्स्वो नातिदीर्घो मनस्वी।
सुवर्ण वर्णः कलायताक्षः
स्वतः सुराणिमिव शोभानाम्ः ।।
महाभारत वनपर्वाणि तीर्थयात्रा पर्व ।।
2 अध्याय
13. स्फटिक स्थलमासय जलमित्य भिशंकया।
स्ववस्त्रों त्कर्षणं राजा कृतवान् बुद्धिमोहित्ः।।
दुर्मना विमु खश्चैव परिचक्राम तां सभाम्।
महाभारत सभादपर्वणि द्यूतपर्व, अध्याय 47/1

*****